भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था

मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान बहुत रहमवाला है।'

भारत की प्राचीन सामाजिक व्यवस्था

भारतीय समाज शताब्दियों से चार प्रमुख वर्णों में विभाजित रहा है। ये वर्ण हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वेदों के अनुसार ब्रह्मा (सृष्टिकर्ता) के मुख से ब्राह्मण अस्तित्व में आये, भुजा से क्षत्रिय, जांघ से वैश्य और पैर से शूद्र पैदा हुए। तदंतर इसी लिहाज़ से इनके काम और समाज में इनका स्थान नियत हुआ। ब्राह्मणों को धार्मिक नेतृत्व मिला। समाज में इनका स्थान सबसे ऊंचा था। देश की सुरक्षा और उ़स पर शासन करने की ज़िम्मेदारी क्षत्रियों को सौंपी गयी। ब्राह्मणों के बाद इन्हीं का दर्जा था। वैश्यों की सामाजिक स्थिति इन दोनों के बाद थी। इनका काम कृषि, खेतीबाड़ी और व्यापार था। शूद्रों का काम इन सबकी सेवा करना तय पाया। शूद्र सबसे निम्न वर्ण के थे। वर्णों का यह विभाजन ईश्वरीय विभाजन स्वीकार कर लिया गया।

कहा जाता है कि जिस प्रकार मनुष्य के विभिन्न अंग अपनी जगह अपना-अपना काम करते हैं, तभी जीवन की गाड़ी शान्तिपूर्वक चलती है और जब इसमें व्यवधान उत्पन्न होता है, तो जीवन की सुख-शान्ति भंग हो जाती है। इसी प्रकार ईश्वर ने समाज के विभिन्न वर्णों को विभिन्न कामों के लिए पैदा किया है और वे सब मिलकर समाज की ज़रूरतों को पूरी करते हैं। लेकिन यह तर्क और दर्शन बिल्कुल ग़लत और आधारहीन है, क्योंकि ईश्वर ने इनसान या

जानवर के जिस अंग को जिस काम के लिए पैदा किया है, वही काम वह कर सकता है, कोई दूसरा काम वह नहीं कर सकता । आंख देख सकती है, उससे सुनने या बोलने का काम नहीं लिया जा सकता । इसी तरह हाथ स्पर्श करने व पकड़ने और पैर चलने के लिए बनाए गए हैं, वे बोलने या देखने की क्षमता से वंचित हैं । इसी लिए इनसे बोलने और देखने का काम नहीं किया जा सकता । लेकिन इनसान विभिन्न योग्यताएँ लेकर पैदा होता है, उसे किसी एक निश्चित कार्य का पाबन्द नहीं बनाया जा सकता । अतः सभी इनसानों को उनकी अपनी स्वाभाविक योग्यता के आधार पर कार्य करने का समान अवसर मिलना चाहिए । इसी से वे व्यक्तिगत रूप से उन्नति कर सकते हैं और समाज के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं ।

वर्ण-व्यवस्था में कामों का विभाजन क्षमता व योग्यता के आधार पर नहीं है, बल्कि इसका आधार नस्ल (Race) पर है । इसका अर्थ यह है कि एक विशिष्ट नस्ल के लोग ही धार्मिक ज्ञान प्राप्त करेंगे और धार्मिक नेतृत्व उन्हीं को प्राप्त रहेगा । किसी दूसरी नस्ल और वर्ण के लिए धार्मिक ज्ञान प्राप्त करना निषिद्ध होगा और वह कभी धार्मिक नेतृत्व नहीं कर सकेंगे । जिस नस्ल (जाति) का सम्बन्ध शासन करने और देश की सुरक्षा से है, सत्ता और सेना उसी के हाथ में होगी । शासन और सत्ता का अधिकार किसी दूसरी नस्ल को प्राप्त न होगा । जिस नस्ल का सम्बन्ध कृषि व खेतीबाड़ी से है, यही सदैव उसका पेशा होगा । उसे किसी और जीवन-विभाग में हस्तक्षेप करने का अधिकार न होगा । इस तरह जो नस्ल गुलामी और चाकरी के लिए विशिष्ट है, वह सदैव व हर हाल में यही काम करेगी और वह इस चक्र से कभी बाहर नहीं निकल सकती ।

इन वर्णों को उनकी सेवाओं और पेशों के लिहाज़ से उच्च व निम्न वर्ण में विभाजित कर दिया गया है । ब्राह्मण को सबसे उच्च

व प्रतिष्ठित समझा गया है, इसलिए कि धार्मिक नेतृत्व उसके हाथ में है । इसके बाद क्षत्रिय व वैश्य हैं । सबसे निम्न वर्ण शूद्र ठहराया गया है और उसके भाग्य को दासता व गुलामी से जोड़ दिया गया है । इन वर्णों को जीवन के संसाधन और आजीविका भी उच्च व निम्न के विभाजन के अनुपात में ही प्राप्त हो रही हैं । जो वर्ण धार्मिक नेतृत्व कर रहा था, उसे उसकी उच्च शिक्षा प्राप्त करने और उसमें दक्षता प्राप्त करने की सुविधाएँ उपलब्ध रहीं ।

धार्मिक नेतृत्व व शासन एक-दूसरे से जुड़े हुए थे, इसलिए इस वर्ण को प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक नेतृत्व और मार्गदर्शन का पद भी प्राप्त रहा । इस लिहाज़ से आर्थिक संसाधनों पर भी उनका क़ब्ज़ा रहा । क्षत्रियों को शासन करने का जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त था, इसलिए प्रशासनिक लाभ उसे प्राप्त थे । कोई दूसरी नस्ल न तो शासन का दावा कर सकती थी और न उसमें शरीक हो सकती थी । वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रियों की दया व कृपा पर निर्भर थे और देश की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे । शूद्र इन सारी सुविधाओं और अवसरों से वंचित थे, जो उन वर्णों को प्राप्त थे । इसके परिणामस्वरूप आर्थिक ही नहीं, सामाजिक पहलू से भी उत्थान और पतन की धारणा ने जन्म लिया । उच्च वर्ण के लोगों ने निम्न वर्ण के लोगों को समानता का अधिकार नहीं दिया, न सामाजिक सम्बन्धों में और न ही सामाजिक व्यवहार में । यहाँ तक कि खाने-पीने और उठने-बैठने में भी यह अन्तर बाक़ी रहा । इससे आगे बढ़कर एक के पवित्र और दूसरे के अपवित्र व अशुद्ध होने की धारणा पैदा हुई और छूत-छात व असमानता की धारणा ने समाज में अपना स्थान बना लिया । इनसानों के मध्य इस विभाजन को धार्मिक प्रमाण पत्र प्राप्त रहा और वह ईश्वरीय विभाजन समझ लिया गया, इसलिए इसे चुनौती भी नहीं दी गई ।

इनसानों के मध्य यह भेद-भाव, अत्याचारपूर्ण एवं बुद्धि व

प्रकृति के खुल्लमखुल्ला ख़िलाफ़ और इनसानों की प्रतिष्ठा, मान–सम्मान और सज्जनता के बिल्कुल विरुद्ध है । इसकी बुनियाद पर जो समाज अस्तित्व में आएगा, वह न्याय व इनसाफ़ से निश्चित रूप से वंचित और अन्याय एवं असन्तुलन का हमेशा शिकार रहेगा । इस अन्तर और भेदभाव को आज पूरी दुनिया ज़ुल्म समझती है और मानवाधिकार के संगठन इसके विरुद्ध आवाज़ उठाते रहते हैं, लेकिन इसे मिटाने में सफल नहीं हैं । भारतीय संविधान भी इसे उचित नहीं मानता और यहाँ की राजनैतिक पार्टियाँ भी इसे न्याय और इनसाफ़ के विरुद्ध समझती हैं और इसे हर पार्टी अपना राजनैतिक मुद्दा बनाती है, लेकिन हमारे समाज ने अभी इसे पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किया है, इसलिए सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर ज़ुल्म व अन्याय और असमानता का व्यवहार निरन्तर जारी है ।

इस मौक़े पर इस्लाम की तरफ़ नज़र जाती है, तो इस यक़ीन में और वृद्धि होती है कि मानव–जीवन की अन्य समस्याओं की तरह वह इस समस्या को भी इस तरह हल करता है कि इससे बेहतर हल की आशा नहीं की जा सकती । वह इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था के विरुद्ध न्याय व इनसाफ़ पर आधारित एक नयी व्यवस्था पेश करता है । यहाँ इसके कुछ पहलुओं की निशानदेही की जा रही है ।

इस्लाम हर तरह के शोषण का विरोधी है । वह इस बात की अनुमति नहीं देता कि एक इनसान दूसरे इनसान का या एक समुदाय दूसरे समुदाय का किसी भी तरह शोषण करे । वह ज़ुल्म व अत्याचार के हर मुमकिन रास्ते पर रोक लगाता और इनसान को न्याय व इनसाफ़ का पाबन्द बनाता है ।

दुनिया की हर व्यवस्था, कार्य–विभाजन के आधार पर चलती है । यह विभाजन योग्यता के आधार पर होना चाहिए, न कि वर्ण व समुदाय के आधार पर । न कोई वर्ण किसी काम से वंचित किया जा सकता है और न किसी वर्ण के लिए सेवाएँ, पद व मन्सब अनिवार्य

रूप से सुरक्षित किए जा सकते हैं । वैचारिक स्वतंत्रता के साथ व्यावहारिक स्वतंत्रता भी होनी चाहिए । यही प्राकृतिक नियम है और यही इस्लाम की शिक्षा है ।

इस्लाम की शिक्षा है कि कोई व्यक्ति या गिरोह आर्थिक रूप से कमज़ोर हो, तो उसे ऊपर उठाने और मज़बूत बनाने की कोशिश की जाए और उसे असहाय और बेबसी की हालत में न छोड़ा जाए । उसकी परेशानियों में काम आना और उसकी तरक़्क़ी की राह की हर बाधा दूर करना लोगों और संस्थाओं की ज़िम्मेदारी है । शासन की ज़िम्मेदारी इस मामले में सबसे अधिक है ।

शिक्षा के क्षेत्र में नागरिकों के बीच कोई अन्तर नहीं होना चाहिए । प्रत्येक को इसका अवसर प्राप्त हो कि वह शिक्षा के जिस क्षेत्र में भी आगे बढ़ना चाहे बढ़े । इस्लामी इतिहास साक्षी है कि इस्लाम ने समाज में शिक्षा का आम वातावरण पैदा किया, जिसके परिणामस्वरूप हर वर्ण, हर क्षेत्र और प्रत्येक देश के लोगों के लिए ज्ञान की राहें खुली रहीं और हर क्षेत्र में उन्होंने तरक़्क़ी की । कुरआन–हदीस भाष्य; इस्लामी धर्मशास्त्र जैसे विशुद्ध इस्लामी ज्ञान के अलावा साहित्य, इतिहास, सामाजिक शिक्षा, दर्शनशास्त्र, विज्ञान, चिकित्साशास्त्र और अंकशास्त्र के क्षेत्र में भी अरब व ग़ैर–अरब के हर वर्ण ने अग्रसरता दिखाई और अपनी भूमिका अदा की, बल्कि विभिन्न प्रकार के ज्ञान–विज्ञान को फैलाने और उन्नति देने में ग़ैर–अरबों की भूमिका अरबों से अधिक रही ।

प्रत्येक वर्ण के लोगों ने अपनी योग्यता के आधार पर दीनी इमामत (धार्मिक नेतृत्व) भी किया, शासन की बागडोर भी सम्भाली और ऊँचे पद भी प्राप्त किए, किसी की राह में कोई बाधा नहीं आई। समाज में कमज़ोरों और ताक़तवरों के बीच समानता पैदा की । छोटे-बड़े, अधम–श्रेष्ठ और ऊँच–नीच की धारणा को ख़त्म किया और सबको एक समान अधिकार दिए । समाज में जब तक बराबरी

का एहसास न हो, आदमी मनोवैज्ञानिक रूप से ऊंच-नीच का शिकार रहेगा ।

इस्लाम की धारणा है कि ख़ुदा के निकट सफलता और असफलता का मानदंड वर्ण और समुदायों पर नहीं, बल्कि ईमान और सद्कर्म पर है । इसके अलावा निम्नता और उच्चता के सारे मानदंड झूठे हैं । यहाँ ज्ञान और कर्म के लिहाज़ से जो उच्च और श्रेष्ठ होगा, अल्लाह के यहाँ भी वही उच्च व श्रेष्ठ होगा । जो यहाँ इस दौलत से वंचित होगा, वहाँ वह निर्धन समझा जाएगा और सबसे बड़े घाटे में पड़ा हुआ होगा ।

लेकिन अफ़सोस कि इस्लाम की इस धारणा को इस देश में आम करने की कोशिश एक लम्बी अवधि से न हो सकी और ख़ुद इस्लाम के अनुयायी यहाँ की सभ्यता के प्रभाव में आकर झूठे भेदभाव का शिकार हो गये और ऊंच-नीच के इन मानदंडों को व्यावहारिक रूप से स्वीकार कर लिया, जो इस देश में प्रचलित थे । अन्यथा इस्लाम इस देश के लिए जीवनदायक पैग़ाम साबित होता और वर्णों में बंटा हुआ यह समाज और ज़ुल्म व ज़्यादती की मारी हुई यह इनसानी आबादी इसके समानता के पैग़ाम पर अमल कर इस तरह आगे बढ़ती जैसे धूप की गर्मी से प्यासा शीतल और मीठे पानी की ओर बढ़ता है ।

ज़रूरत इस बात की है कि मुसलमान अपने देशवासियों को सारे संसार के स्रष्टा व परवरदिगार की प्रदान की हुई न्याय व इनसाफ़ पर आधारित इस व्यवस्था की ओर अपनी कथनी और करनी से दावत दें और यहाँ के वर्णों पर आधारित सभ्यता के दुष्प्रभावों से अपने दामन को बचाते हुए आगे बढ़ें और देशवासियों को भी सामाजिक न्याय की प्राप्ति का वास्तविक सन्मार्ग दिखाएँ ।

■■